दैनिक भास्कर

Date: 03-10-18

खेती पर मशीनों का बोझ डालना पराली जलाने की समस्या का हल नहीं

देविंदर शर्मा, (कृषि विशेषज्ञ व पर्यावरणविद)

कृषि के संकट के लिए ज्यादातर खेती की मंहगी मशीनों का अनावश्यक बोझ जिम्मेदार है पर दोनों प्रमुख कृषि प्रदेश पंजाब व हरियाणा किसानों को और मशीनें बेचने में लगे हैं। धान की कटाई का वक्त निकट आने के साथ दिल्ली में दम घोंटने वाले वायु प्रदूषण की आशंका से दोनों सरकारें धान के अवशेष (पराली) जलाने के समाधान के नाम पर मशीनें बेचने में लगी हैं। पंजाब का लक्ष्य 27,972 मशीनें सप्लाई करने का है। इसमें हैप्पी सीडर, पैडी स्ट्रा चॉपर, कटर, मल्चर, श्रब कटर, जीरो टिल ड्रिल जैसी मशीनें शामिल हैं।

इसके अलावा कंबाइन हार्वेस्टर मशीन के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें स्ट्रा मैनेजमेंट उपकरण भी हो, जो बायोमास को काटकर खेत में फैला दे। किसानों के लिए हैप्पी सीडर मशीन 50 फीसदी सब्सिडी पर उपलब्ध है, जबकि सहकारी संस्थाओं और किसानों के समूह के लिए इस पर 80 फीसदी सब्सिडी है। यह तो खेती के उपकरण बनाने वालों के लिए अपनी मशीनें खेतों में डम्प करने का नायाब मौका है। पंजाब में 1 लाख ट्रैक्टरों की जरूरत होते हुए 4.5 लाख ट्रैक्टर मौजूद है। समझ में नहीं आता कि किसानों पर छह से आठ मशीनों का और बोझ क्यों डाला जा रहा है। पंजाब में किसान के कर्ज के पीछे ट्रैक्टरों का बोझ ही है। पराली की समस्या तीन-चार हफ्ते ही चलती है। ये मशीनें साल के ज्यादातर समय बेकार पड़ी रहेंगी।

पहले ही पोली हाउस के लिए 25 लाख तक कि विशाल सब्सिडी दे गई है। कई अध्ययनों में पता चला है कि 80 फीसदी से ज्यादा पोलीहाउस बेकार पड़े हैं। यह किसी बड़े घोटाले से कम नहीं है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश को जो चाहिए उसका सुझाव पंजाब के मुख्यमंत्री अमरिंदर सिंह ने पूर्व में दिया था। उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसान बिना पराली जलाए फसल काट लें, केंद्र से 2000 करोड़ के निवेश की मांग की थी। प्रति क्विंटल 100 रुपए। वे सही थे पर उन्हें बताया गया कि पैसा नहीं है। हाईवे बनाने के लिए 6.9 लाख करोड़ रुपए के प्रस्तावित आर्थिक प्रोत्साहन पैकेज का छोटा-सा अंश पराली जलाने की समस्या को क्यों नहीं दिया जाता? पूर्व सकारी कर्मचारियों का महंगाई भत्ता 1 फीसदी बढ़ा दिया। इससे 3,000 करोड़ रुपए का बोझ पड़ा है। लेकिन, खेती हो तो सरकार हमेशा हाथ खड़े कर देती है। किसान पर्यावरण पर पड़ रहे प्रभाव से वाकिफ है पर उन्हें आर्थिक मदद चाहिए। पंजाब के किसान प्रति एकड़ 6000 रुपए मुआवजा चाहते हैं, जो उन्हें पराली जलाने से बचने के प्रयासों में लगेंगे। यह साल में एक बार का निवेश होगा। कोई कारण नहीं है कि सरकार किसान को सीधे आर्थिक प्रोत्साहन न दे सके। पंजाब में 12.5 लाख मनरेगा कार्डधारी हैं। राज्य मरेगा के तहत उपलब्ध 4,000 करोड़ का फंड इस्तेमाल नहीं कर पाया है। मनरेगा गतिविधियों में

धान के भूसे के प्रबंधन को शामिल करके पंजाब न सिर्फ बेकार मजदूरों के लिए रोजगार पैदा करता बल्कि पराली जलाने के पर्यावरणीय दुष्प्रभाव को भी समायोजित कर लेता।

Date: 03-10-18

वसूली से सात गुना कर्ज बट्टा खाते में डालने का लेखा

संपादकीय

सरकारी बैंकों की कार्यप्रणाली में लोचा दिखना बंद ही नहीं हो रहा है। ताजा मामला रिजर्व बैंक की रिपोर्ट से सामने आया है। वर्ष 2014 से 2018 तक देश के सार्वजनिक क्षेत्र के 21 बैंकों ने जितनी वसूली की है उसका सात गुना धन बट्टा खाते में डाल दिया है। अगर वसूली 44,900 करोड़ रुपए की रही है तो बट्टा खाते में डाले गए कर्ज का परिमाण 3,16,500 करोड़ रुपए है। यानी आमदनी अठन्नी खर्चा रुपैया। हालांकि बट्टा खाते में डालने का मतलब उस कर्ज का माफ करना नहीं होता। बट्टा खाते में डालने का मतलब यह होता है कि बैंक ने वह राशि अपनी बैलेंस शीट से हटा दी है। ऐसा करने से बैंकों को अपना लाभ दिखाई पड़ता है और परिसंपत्ति पर तनाव कम हो जाता है। इससे करों के निर्धारण में भी सुविधा होती है। इस बीच अगर बैंक वसूली कर लेता है तो उस राशि को अपने लाभ में दर्शा देता है। लेकिन, एनडीए सरकार के चार साल के कार्यकाल के दौरान बट्टा खाते में डाली गई यह राशि पिछले दस सालों में बट्टा खाते में डाली गई राशि की 166 प्रतिशत है।

इतना ही नहीं यह राशि 2018 के आम बजट में शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा के लिए आवंटित 1.38 लाख करोड़ रुपए की राशि के दोगुने से भी ज्यादा है। वैसे मौजूदा सरकार का दावा है कि अगर 2014 तक एनपीए की वृद्धि रुकी हुई थी तो उसके पीछे उस कर्ज को छुपाया जाना था। इसीलिए बैंकों के लिए एसेट क्वालिटी रिव्यू का नया फार्मूला निकाला गया और यह पता लगाने का प्रयास किया गया कि वास्तव में बैंकों की जायदाद कितनी है। यह सही है कि सार्वजनिक बैंकों का रिकवरी रेट बढ़ा है और 2014 के मुकाबले तीन गुने से ज्यादा हो गया है। अभी सरकारी बैंकों का रिकवरी रेट 14.2 प्रतिशत है जो निजी बैंकों का भी तीन गुना है। उधर नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल भी बट्टा खाते के कर्ज पर सुनवाई और उन्हें वसूल करने का काम कर रहा है। सारे प्रयास दिखाते हैं कि बैंकों की सेहत सुधारने के लिए चाहे इक्विटी कैपिटल का प्रयास हो या रिकवरी का बहुत सार्थक नहीं हो पा रहा है। कारण स्पष्ट है कि सरकार उन पर कड़ाई नहीं कर पा रही है, जिन्होंने भारी कर्ज लिया है और देने को तैयार नहीं हैं। याराना पूंजीवाद के विरुद्ध जो लड़ाई 2012 में शुरू हुई थी वह लगभग ठंडी पड़ चुकी है। देखना है केंद्रीय बैंक और देश की चिंता करने वाले राजनेता इस कमी को कैसे दूर करते हैं।

Date: 03-10-18

बिज़नेस स्टैंडर्ड

स्वच्छतर भारत

संपादकीय

केंद्र की भाजपानीत सरकार की प्रमुख योजनाओं में से एक स्वच्छ भारत अभियान (एसबीए) के चार वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस अभियान का लक्ष्य है वर्ष 2019 में महात्मा गांधी के जन्म की 150वीं वर्षगांठ तक देश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में स्वच्छता का लक्ष्य हासिल करना। सरकार के अनुमानों के मुताबिक अब तक इस अभियान को जबरदस्त सफलता प्राप्त हुई है और महज पांच वर्ष की अवधि में देश खुले में शौच से मुक्त (ओडीएफ) राष्ट्र का दर्जा प्राप्त कर लेगा। इस तरह स्वच्छता को लेकर संयुक्त राष्ट्र स्थायी विकास लक्ष्य को वह तय अवधि से 11 वर्ष पूर्व हासिल कर लेगा। सरकार का कहना है कि देश में ग्रामीण स्वच्छता का स्तर चार वर्ष पूर्व के 39 फीसदी से बढ़कर अब 93 फीसदी हो गया है। देश के 4.50 लाख गांवों को ओडीएफ घोषित किया जा चुका है। इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व में खुले में शौच में भारत की हिस्सेदारी जो अक्टूबर 2014 में 60 फीसदी के शर्मनाक स्तर पर थी वह सितंबर 2018 में घटकर 20 फीसदी रह गई है।

न उपलब्धियों को देखते हुए आश्चर्य नहीं कि भारत ने अभी हाल ही में दुनिया के देशों के स्वच्छता मंत्रियों, विभिन्न बहुपक्षीय संस्थानों के प्रमुखों और संयुक्त राष्ट्र के महासचिव समेत विभिन्न विशेषज्ञों की मेजबानी की। ये सभी लोग महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय स्वच्छता सम्मेलन में हिस्सा लेने आए थे। सम्मेलन में यह बताया गया कि देश ने इतना बड़ा बदलाव कैसे किया। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि अन्य देश मसलन चीन और पाकिस्तान भी अब ऐसा ही अभियान चला रहे हैं। निस्संदेह स्वच्छ भारत अभियान एक सराहनीय पहल है और देश की स्वच्छता और स्वास्थ्य मानकों में सुधार एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिसमें तत्काल सुधार आवश्यक था। बहरहाल, यह गुलाबी तस्वीर स्वच्छ भारत अभियान को लेकर किए गए कुछ निष्पक्ष आंकड़ों से मेल नहीं खाती। उदाहरण के लिए ओडीएफ जो इस अभियान का समानार्थी बन चुका है, के आंकड़ों पर टैक्सस विश्वविद्यालय के निखिल श्रीवास्तव ने सवाल उठाए और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बार्कले की पायल हाथी ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वच्छता सर्वेक्षण (एनएआरएसएस) के आंकड़ों के निष्कर्ष को वर्गीकृत कर बताया है कि ग्रामीण भारत में खुले में शौच से मुक्ति का दावा अपरिपक्व है। उन्होंने यह भी कहा कि व्यवहार में इस सर्वेक्षण को सरकार के दावों की पुष्टि के लिए तैयार किया गया और ये प्रबंधन सूचना तंत्र (एमआईएस) पर आधारित हैं।

समस्या यह है कि एमआईएस की रिपोर्ट केवल शौचालय निर्माण को ध्यान में रखती है उसके प्रयोग को नहीं। इतना ही नहीं योजना के पीछे की राजनीति को देखें तो ग्राम स्तर के अधिकारियों पर सफलता दर्शाने का अत्यधिक दबाव है। निश्चित तौर पर सरकार के दावों को अतिरंजित बताने वाले अन्य नतीजे भी हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस-4) के ताजा नतीजे एनएआरएसएस से विरोधाभासी हैं। यह अंतरराष्ट्रीय तुलना करने के लायक उच्च स्तरीय सर्वेक्षण है। इन दोनों को कुछ ही महीनों के अंतर पर अंजाम दिया गया था। ओडीएफ के लक्ष्य के अलावा स्वच्छ भारत अभियान तरल और ठोस कचरे के प्रबंधन आदि के मानकों पर भी औसत रहा है। उदाहरण के लिए हमारे शहरों में रोज 6,200 करोड़ लीटर गंदगी बहती है जिसमें से केवल 2,300 करोड़ लीटर का उपचार होता है। शेष

गंदगी नदियों में मिल जाती है। इसी तरह केवल 37 फीसदी कचरे का उपचार होता है। गांवों में स्वच्छता को लेकर व्यवहार के स्तर पर बदलाव एक अन्य चुनौती है। बने हुए शौचालयों का इस्तेमाल सुनिश्चित किया जाना चाहिए। ग्रामीण इलाकों में 4.50 लाख प्रेरक इस काम में लगे हैं। फिर भी अभी लंबी दूरी तय करनी है।

Date: 03-10-18

आयात शुल्क बढ़ाने का फैसला कितना जायज ?

ए के भट्टाचार्य

केंद्रीय वित्त मंत्रालय ने गत बुधवार को कुछ उत्पादों पर लगने वाले आयात शुल्क में वृद्धि का ऐलान किया। इस फैसले का मकसद कुछ खास उत्पादों के आयात में कटौती करना और चालू खाता घाटा कम करना है। मंत्रालय के मुताबिक वर्ष 2017-18 में इन उत्पादों के आयात का कुल मूल्य करीब 13 अरब डॉलर रहा था जो कुल आयात मूल्य का महज 2.8 फीसदी था। मंत्रालय के इस बयान का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि 19 उत्पाद समूहों पर लगने वाले बुनियादी सीमा शुल्क में खासी बढ़ोतरी की गई है। फुटवियर पर शुल्क वृद्धि करीब 25 फीसदी है तो आभूषण और रेफ्रिजरेटर एवं एयर कंडीशनर में इस्तेमाल होने वाले कंप्रेसर पर 33 फीसदी तक की बढ़ोतरी हुई है। रेडियल टायर, हीरा, रत्न, किचनवेयर और स्टेशनरी जैसे 11 अन्य उत्पाद समूहों पर शुल्क 50 फीसदी तक बढ़ा दिया गया है। एयर कंडीशनर, रेफ्रिजरेटर और वॉशिंग मशीनों पर सीमा शुल्क 100 फीसदी तक बढ़ा है। वित्त मंत्रालय की इस सूची में शामिल 19वां उत्पाद एयर टर्बाइन ईंधन है जिस पर पांच फीसदी सीमा शुल्क लगा है। अनुमान के मुताबिक इन उत्पादों पर सीमा शुल्क बढ़ाने से करीब 40 अरब रुपये का अतिरिक्त राजस्व सरकारी खजाने में आएगा जो मौजूदा वित्त वर्ष में अनुमानित कुल सीमा शुल्क संग्रह का 3.5 फीसदी ही होगा।

आयात शुल्क बढ़ाने से आयात कम करने और चालू खाता घाटे में कटौती करने में मदद मिलने की संभावना को लेकर राय जाहिर हो चुकी है। हालांकि इस समय यही अनुमान लगाया जा सकता है कि पिछले कुछ महीनों में इन उत्पादों के आयात में बढ़ोतरी होने से क्या सरकार इस तरह का कदम उठाने के लिए बाध्य हुई? क्या इन उत्पादों का आयात 2017-18 में खतरनाक रूप से बढ़ा था और क्या 2018-19 के पहले चार महीनों में भी वही प्रवृत्ति जारी रही? इनमें से कुछ उत्पादों पर फौरी नजर डालने से स्थिति काफी हद तक स्पष्ट हो जाएगी। फुटवियर: इस श्रेणी में शामिल पांच उत्पादों पर सीमा शुल्क को 20 फीसदी से बढ़ाकर 25 फीसदी कर दिया गया है। वर्ष 2017-18 में इन उत्पादों का आयात मूल्य करीब 61 करोड़ डॉलर रहा जो 2016-17 की तुलना में 34 फीसदी अधिक है। लेकिन अप्रैल-जुलाई 2018 में इन उत्पादों का आयात महज 10 फीसदी की बढ़ोतरी के साथ 20 करोड़ डॉलर ही रहा है। आयात वृद्धि दर में आई यह गिरावट इस अवधि में रुपये की कीमत में आई कमी के चलते भी हो सकती है क्योंकि रुपया कमजोर होने से आयात महंगा हो गया। इसके अलावा इस साल के बजट में भी इन उत्पादों पर आयात शुल्क को 10 फीसदी से बढ़ाकर 20 फीसदी करने का फैसला इसके आयात पर लगाम लगाने का सबब बना। सवाल है कि अगर ये उपाय कारगर थे तो फिर इन उत्पादों पर शुल्क बढ़ाने की क्या जरूरत थी?

रेडियल कार टायर: पिछले साल इन उत्पादों का आयात 24 फीसदी की दर से बढ़कर 20.3 करोड़ डॉलर हो गया था। लेकिन चालू वित्त वर्ष के पहले चार महीनों में इनके आयात में एक फीसदी की आंशिक गिरावट देखी गई। ऐसे में इनके आयात शुल्क को 10 फीसदी से बढ़ाकर 15 फीसदी करने के पीछे क्या वजह हो सकती है? क्या घरेलू टायर उत्पादकों की तरफ से इसके लिए लामबंदी की जा रही थी? बजट में ट्रक और बस रेडियल टायरों पर सीमा शुल्क को 10 फीसदी से बढ़ाकर 15 फीसदी करने के बाद से ही इन विनिर्माताओं की नजर रेडियल कार टायरों पर लगी थी। सोना, चांदी और बहुमूल्य धातुओं से बने आभूषण: वर्ष 2017-18 में इन उत्पादों का आयात जबरदस्त उछाल के साथ 314.8 करोड़ डॉलर पर पहुंच गया था जबकि 2016-17 में यह 37.3 करोड़ डॉलर ही था। हालांकि अप्रैल-जुलाई 2018 में इनका आयात 2017 की समान अवधि में रहे 55.8 करोड़ डॉलर के मुकाबले बड़ी गिरावट के साथ 21.2 करोड़ डॉलर पर खिसक आया। लेकिन इतनी बड़ी गिरावट भी सरकार को संतुष्ट नहीं कर पाई और उसने शुल्क को 15 फीसदी से बढ़ाकर 20 फीसदी कर दिया।

इसी तरह घरेलू इस्तेमाल वाले रेफ्रिजरेटर में लगने वाले उपकरण, दफ्तरों, शौचालयों और रसोईघरों में इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक उत्पाद, ट्रैवल बैग, हीरे और रत्नों के आयात में भी अप्रैल-जुलाई 2018 के दौरान गिरावट या सुस्ती देखने को मिली है। स्पीकर, एयर कंडीशनर और वॉशिंग मशीन में लगने वाले उपकरण और एयर टर्बाइन ईंधन जैसे कुछ उत्पादों के आयात में ही इन चार महीने में गत वर्ष की तुलना में बढ़ोतरी दर्ज की गई है। सवाल यह है कि अगर पिछले कई महीनों के आंकड़े कई उत्पादों के आयात में गिरावट या सुस्ती दिखा रहे थे तो सरकार ने किन कारकों से प्रभावित होकर शुल्क बढ़ाने का यह फैसला किया? क्या सरकार ने इस तरह की शुल्क वृद्धि से घरेलू विनिर्माण की सक्षमता पर पडने वाले हानिकारक प्रभाव को भी ध्यान में रखा? क्या विवेकाधीन फैसला कर कुछ चुने उत्पादों पर अधिक शुल्क लगाना संवेदनशील नीति है खासकर ऐसे समय जब रुपये में गिरावट ने इनमें से कई उत्पादों के आयात पर पहले से ही चोट पहुंचानी शुरू कर दी थी। शुल्कों में विवेकाधीन वृद्धि पर भारत के अनुभव से पता चलता है कि चुनिंदा हस्तक्षेप कर कुछ उत्पादों पर शुल्क वृद्धि सरल है लेकिन विवेकाधीन निर्णय प्रणाली को खत्म करना एक लंबी कवायद हो सकती है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 02-10-18

'बापू के सपनों को पूरा करने के लिए'

नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री

बापू आज भी विश्व में उन लाखों-करोड़ों लोगों के लिए आशा की किरण हैं, जो समानता, सम्मान, समावेश और सशक्तीकरण से भरपूर जीवन जीना चाहते हैं। विरले ही लोग होंगे, जिन्होंने मानव समाज पर उनके जैसा गहरा प्रभाव छोड़ा हो। महात्मा गांधी ने भारत को सही अर्थों में सिद्धांत और व्यवहार से जोड़ा था। सरदार पटेल ने ठीक ही कहा था, 'यदि कोई ऐसा व्यक्ति था, जिसने उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए सभी को एकजुट किया, जिसने लोगों को

मतभेदों से ऊपर उठाया और विश्व मंच पर भारत का गौरव बढ़ाया, तो वह केवल महात्मा गांधी ही थे। बापू ने भविष्य का आकलन किया और स्थितियों को व्यापक संदर्भ में समझा।'

इक्कीसवीं सदी में भी महात्मा गांधी के विचार उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उनके समय में थे और वे ऐसी अनेक समस्याओं का समाधान कर सकते हैं, जिनका सामना आज विश्व कर रहा है। एक ऐसे विश्व में, जहां आतंकवाद, कट्टरपंथ, उग्रवाद और विचारहीन नफरत देशों और समुदायों को विभाजित कर रही है, वहां शांति और अहिंसा के महात्मा गांधी के स्पष्ट आह्वान में मानवता को एकजुट करने की शक्ति है। ऐसे युग में, जहां असमानताएं होना स्वाभाविक है, बापू का समानता और समावेशी विकास का सिद्धांत विकास के आखिरी पायदान पर रह रहे लाखों लोगों के लिए समृद्धि के एक नए युग का सूत्रपात कर सकता है।

महात्मा गांधी ने एक सदी से भी अधिक पहले, मानव की आवश्यकता और उसके लालच के बीच अंतर स्पष्ट किया था। उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते समय संयम और करुणा, दोनों के पालन की सलाह दी, और स्वयं इनका पालन करके मिसाल पेश की थी। वह अपना शौचालय स्वयं साफ करते थे और आस-पास के वातावरण की स्वच्छता सुनिश्चित करते थे। गांधीजी यह सुनिश्चित करते थे कि पानी कम से कम बर्बाद हो और अहमदाबाद में उन्होंने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि दूषित जल साबरमती के जल में न मिले। गांधीजी के व्यक्तित्व की सबसे खूबसूरत बात यह थी कि उन्होंने हर भारतीय को एहसास दिलाया था कि वे भारत की स्वतंत्रता के लिए काम कर रहे हैं। उन्होंने अध्यापक, वकील, चिकित्सक, किसान, मजदूर, उद्यमी, सभी में आत्म-विश्वास की भावना भर दी थी कि जो कुछ भी वे कर रहे हैं, उसी से वे स्वाधीनता संग्राम में योगदान दे रहे हैं।

करीब आठ दशक पहले जब प्रदूषण का खतरा इतना बड़ा नहीं था, तब महात्मा गांधी ने साइकिल चलानी शुरू की थी। जो लोग उस समय अहमदाबाद में थे, इस बात को याद करते हैं कि गांधीजी कैसे गुजरात विद्यापीठ से साबरमती आश्रम साइकिल से जाते थे। मैंने पढ़ा है कि गांधीजी के सबसे पहले विरोध-प्रदर्शनों में वह घटना शामिल है, जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में उन कानूनों का विरोध किया, जो लोगों को साइकिल का उपयोग करने से रोकते थे। कानून के क्षेत्र में एक समृद्ध भविष्य होने के बावजूद जोहानिसबर्ग में आने-जाने के लिए गांधीजी साइकिल का प्रयोग करते थे। ऐसा कहा जाता है कि जब एक बार जोहानिसबर्ग में प्लेग का प्रकोप हुआ, तो गांधीजी साइकिल से सबसे ज्यादा प्रभावित स्थान पर पहुंचे और राहत-कार्य में जुट गए। क्या आज हम इस भावना को अपना सकते हैं?

ये त्योहारों का समय है और पूरे देश में लोग नए कपड़े, उपहार, खाने की चीजें और अन्य वस्तुएं खरीदेंगे। ऐसा करते समय हमें गांधीजी की एक बात को ध्यान में रखना चाहिए, जो उन्होंने हमें एक ताबीज के रूप में दी थी। ऐसे मौके पर हमें यह सोचना चाहिए कि कैसे हमारे क्रिया-कलाप अन्य भारतीयों के जीवन में समृद्धि का दीया जला सकते हैं? चाहे वे खादी के उत्पाद हों या फिर उपहार की वस्तुएं या फिर खाने-पीने का सामान, जिस भी चीजों का वे उत्पादन करते हैं, उन्हें खरीदकर एक बेहतर जिंदगी जीने में हम अपने साथी भारतीयों की मदद करेंगे।

पिछले चार वर्षों में 'स्वच्छ भारत अभियान' के जरिए 130 करोड़ भारतीयों ने महात्मा गांधी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। हर भारतीय के कठोर परिश्रम के कारण यह अभियान आज एक ऐसे जीवंत जनांदोलन में बदल चुका है, जिसके परिणाम सराहनीय हैं। साढ़े आठ करोड़ से ज्यादा परिवारों के पास अब पहली बार शौचालय की सुविधा है। 40 करोड़ से ज्यादा भारतीयों को अब खुले में शौच के लिए नहीं जाना पड़ता। चार वर्षों के छोटे से कालखंड में स्वच्छता का दायरा

39% से बढ़कर 95% पर पहुंच गया है। 21 राज्य व संघशासित क्षेत्र और साढ़े चार लाख गांव अब खुले में शौच से मुक्त हैं। यह अभियान आत्म-सम्मान और बेहतर भविष्य से जुड़ा है। यह उन करोड़ों महिलाओं के भले की बात है, जो हर सुबह खुले में दैनिकचर्या से निवृत्त होते समय मुंह छिपाती थीं। मुंह छिपाने की यह समस्या अब इतिहास बन चुकी है। साफ-सफाई के अभाव में जो बच्चे बीमारियों का शिकार बनते थे, उनके लिए शौचालय वरदान बना है।

कुछ दिनों पहले राजस्थान के एक दिव्यांग भाई ने मेरे 'मन की बात' कार्यक्रम के दौरान मुझे फोन किया था। उन्होंने बताया था कि वह दोनों आंखों से देखने में लाचार थे, लेकिन जब उन्होंने अपने घर में खुद का शौचालय बनवाया, तो उनकी जिंदगी में कितना बड़ा बदलाव आया। उनके जैसे अनेक दिव्यांग भाई और बहन हैं, जो सार्वजनिक स्थलों और खुले में शौच जाने की असुविधा से मुक्त हुए हैं। आज बहुत बड़ी संख्या उन भारतीयों की है, जिन्हें स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने का सौभाग्य नहीं मिला। हमें उस समय देश के लिए जीवन बलिदान करने का अवसर तो नहीं मिला, लेकिन अब हमें ऐसे भारत के निर्माण का हरसंभव प्रयास करना चाहिए, जैसे भारत का सपना हमारे स्वाधीनता सेनानियों ने देखा था। आज गांधीजी के सपनों को पूरा करने का एक बेहतरीन अवसर हमारे पास है। वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे- यह बापूजी की सबसे प्रिय पंक्तियों में से एक थी। यही वह भावना थी, जिसने उन्हें दूसरों के लिए जीवन जीने के लिए प्रेरित किया। हम, 130 करोड़ भारतीय, आज उन सपनों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, जो बापू ने देश के लिए देखे और जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन का बलिदान दिया था।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 02-10-18

मजबूरी नहीं, जरूरी हैं गांधी

संपादकीय

श्रेष्ठ विचारों की झंडी बनाकर उससे सजावट करने में हमारा जवाब नहीं है। गांधी इसके उदाहरण हैं। लंबे अरसे तक देश में कांग्रेस पार्टी का शासन रहा। पार्टी खुद को गांधी का वारिस मानती है, पर उसके शासनकाल में ही गांधी सजावट की वस्तु बने। हमारी करंसी पर गांधी हैं, और अब नये नोटों में उनका चश्मा भी है। पर हमने गांधी के विचारों पर आचरण नहीं किया। उनके विचारों का मजाक बनाया। कुछ लोगों ने कहा, मजबूरी का नाम महात्मा गांधी। लंबे अरसे तक देश के कम्युनिस्ट नेता उनका मजाक बनाते रहे, पर आज स्थिति बदली हुई है। गांधी का नाम लेने वालों में वामपंथी सबसे आगे हैं। उनके जन्मदिन को राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाने और तमाम शहरों की सड़कों को महात्मा गांधी मार्ग बनाने के बावजूद हमें लगता है कि उनकी जरूरत 1947 के पहले तक थी। अब होते भी तो क्या कर लेते? वस्तुत: गांधी की जरूरत केवल आजादी की लड़ाई तक सीमित नहीं थी। 1982 में रिचड एटनबरो की फिल्म "गांधी' ने दुनियाभर का ध्यान खींचा, तब इस विषय पर एक बार फिर चर्चा हुई कि क्या गांधी आज प्रासंगिक हैं? वह केवल भारत की बहस नहीं थी। और आज गांधी की उपयोगिता शिद्दत से महसूस की जा रही है। अस्सी के दशक में अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने राजनीतिक कार्यक्रम को "गांधीवादी समाजवाद' का नाम दिया था।

इसमें गांधी और समाजवाद दोनों की मिलावट थी। गांधी के महत्त्व को नरेन्द्र मोदी ने भी स्वीकार किया। उन्होंने 15 सितम्बर से "स्वच्छता ही सेवा अभियान' शुरू किया है, जो 2 अक्टूबर यानी आज तक तक चलेगा। आज से गांधी का 150वां जयंती वर्ष भी शुरू हो रहा है। व्यापक अर्थ में यह गांधी के अंगीकार का अभियान है, जिसके राजनीतिक निहितार्थ भी स्पष्ट हैं। मोदी सरकार ने अपने पहले साल से ही गांधी की 150वीं जयंती का नाम लेना शुरू कर दिया था। जून, 2014 में लोक सभा के पहले सत्र में राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने अपने अभिभाषण में नई सरकार की जिन प्राथमिकताओं को गिनाया था, उनमें एक थी, "स्वच्छ भारत' की स्थापना। मोदी ने नारा दिया, "पहले शौचालय, फिर देवालय।' राष्ट्रपति ने इसी तर्ज पर कहा, देश भर में "स्वच्छ भारत मिशन' चलाया जाएगा और ऐसा करना महात्मा गांधी को उनकी 150वीं जयंती पर हमारी श्रद्धांजलि होगी जो वर्ष 2019 में मनाई जाएगी।पिछले साल 9 अगस्त क्रांति दिवस "संकल्प दिवस' के रूप में मनाने का आह्वान करके मोदी ने कांग्रेस की एक और पहल को छीना था। अगस्त क्रांति के 75 साल पूरे होने पर बीजेपी सरकार ने जिस स्तर का आयोजन किया, उसकी उम्मीद कांग्रेस पार्टी ने नहीं की होगी। मोदी ने 1942 से 1947 को ही नहीं जोड़ा है, 2017 से 2022 को भी जोड़ दिया। मोदी सरकार की योजनाएं 2019 के आगे जा रही हैं। स्वच्छ भारत अभियान भी अगले साल के अक्टूबर तक जा रहा है। वास्तव में गांधी की विरासत पूरे देश की है, पर उनके कार्यक्रमों को भी उसी व्यापक समझ के दायरे में देखना चाहिए। गांधी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था देश में सद्भाव और सामाजिक सौहार्द कायम करना।

आज हमें इस सद्भाव की सबसे ज्यादा जरूरत है। यह जरूरत भारत ही नहीं, पूरी दुनिया को है। गांधी प्रासंगिक हैं, तो दुनिया के लिए हैं, केवल भारत के लिए नहीं, क्योंकि उनके विचार संपूर्ण मानवता से जुड़े हैं। फिर भी सवाल है कि क्या उनका देश भारत आज उन्हें उपयोगी मानता है? कुछ लोगों को यह सोचना मजेदार लगता है कि गांधी आज होते तो क्या करते? क्या कश्मीर का विवाद खड़ा होने देते? क्या 1962, 65 और 71 की लड़ाइयां होतीं ? क्या भारत एटम बम बनाता? क्या बाबरी मस्जिद ढहाई जा सकती थी? क्या चीन के साथ डोकलाम जैसा विवाद होता ? हमें लगता है कि इस व्यावहारिक दुनिया से गांधी की समझ मेल नहीं खाती। बहरहाल, कश्मीर का विवाद गांधी के सामने ही पैदा हो गया था, और उन्होंने कश्मीर में सेना भेजने का समर्थन किया था। हमने गांधी की ज्यादातर भूमिका स्वतंत्रता संग्राम में ही देखी। हम उनके प्रतिरोधी-स्वरूप के आगे देख नहीं पाते हैं। गांधी की प्रशासनिक समझ का जायजा उनके लेखन और व्यावहारिक गतिविधियों से लिया जा सकता है। उनकी सबसे बड़ी काबिलियत थी समूह को साथ लेकर चलना। पिछले कई सौ साल में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ, जिसने दक्षिण एशिया के जन-समूह को इस कदर सम्मोहित किया हो। आज होते तो समय के लिहाज से कोई न कोई रणनीति लेकर आते। उन्हें आधुनिकता का विरोधी माना जाता है। मसलन, वे यंत्रों के विरोधी थे। सवाल है कि विरोधी क्यों थे? इसलिए नहीं कि तकनीकी विकास से उनका बैर था, बल्कि इसलिए कि वे तकनीक को सामाजिक जरूरत के रूप में देखते थे, जो वास्तव में तकनीक का उद्देश्य है।

गांधी काम करने के अधिकार को प्राथमिक मानते थे। मशीनीकरण का उस हद तक विरोध करते थे जिस हद तक वह व्यक्ति के इस अधिकार का हनन करता है। चाहते थे कि औजार उसके प्रयोक्ता के नियंतण्रमें रहे वैसे ही जैसे क्रि केट का बैट या कृष्ण की बांसुरी। उत्पादन प्रक्रिया में नैतिकता हो। उनके ट्रस्टीशिप के विचार पर गंभीरता से विवेचन नहीं हुआ। दुनिया की कंपनियां अब जनता के अंशदान के सहारे खड़ी होती हैं। नियंतण्र पूंजीवाद जिस कॉरपोरेट लोकतंत्र और शेयरहोल्डर के अधिकारों की बात करता है, उससे गांधी के विचारों का टकराव नहीं है। जिस दौर में कार्ल मार्क्स को पूंजीपति और मजदूर के बीच टकराव नजर आ रहा था, गांधी दोनों के झगड़े निपटा रहे थे। वे एडम स्मिथ के इस विचार से असहमत थे कि मनुष्य स्वभावत: स्वार्थ और पाशविक लोभ-लालचों से घिरा है। उन्होंने इस दावे को गलत बताया कि कि व्यक्ति परिश्रम करे तो सफल हो सकता है। उन्होंने लाखों-करोड़ों लोगों का उदाहरण दिया जो हाड़-तोड़

काम करते हैं, और भूखे रह जाते हैं। उनकी प्रासंगिकता का इससे बेहतर उदाहरण क्या हो सकता है कि उन्हें आज संघ परिवार के सदस्यों का समर्थन मिल रहा है, जो कभी उनके आलोचक थे। गांधी को यह देश आज अप्रासंगिक नहीं मानता। अलबत्ता, इतना जरूर मानता है कि आज कोई ईमानदार गांधी हमारे बीच नहीं है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 02-10-18

Building A Dalit Consensus

Whether on reforms or nomenclature, voices from the community must be heard.

Sanjay Paswan, (The writer is a professor, former Union minister and MLC in Bihar)

A public debate was sparked recently after the Union Ministry of Information and Broadcasting issued an advisory against the use of the term "Dalit" and suggested "Scheduled Caste" instead. Being from the community and having devoted my entire academic and political life to social justice, I had misgivings regarding this unanticipated etymological intervention, instigated by a decision of the Nagpur bench of the Bombay High Court. Nomenclature usually plays a crucial role in social and political movements. It helps create identities. Identity creates institutions of unity and, at times, cleavages. From the pre-Independence usage of the term "Depressed Classes" to "Harijan" and now Dalit, we have seen terms evolve and naturally fade away in due course.

Judicial overreach in matters related to social justice has not had much support from the Dalit community for obvious reasons. Take the 2006 intervention in the Nagaraj case, where it laid the responsibility to quantify the backwardness of the community and the inadequacy of representation on the states. If I am not mistaken, there has not been a single foreign secretary or cabinet secretary from the community. Today, only one Dalit holds a secretary-level position. More recently, the judgment diluting the landmark Prevention of Atrocities Act, 1989, led to a further intensification of divisive tendencies. It was the timely intervention of the government through an ordinance that saved the day.

And now the direction on the usage of the term, "Dalit". The question here is more fundamental in nature. How can we expect the judiciary to be sensitive to the issues of the marginalised if it does not reflect social realities and diversity? After the retirement of Justice K G Balakrishnan in 2010, no Dalit judge has reached the Supreme Court. There is not a single Dalit chief justice in the 24 high courts. There is no representation of the disadvantaged where her future is judged. The community must find voice at the top of the power pyramid. A more robust democratic engagement is important for this process. There is an ongoing churn in the community. The fruits of reservations have successfully established a well-settled section, howsoever minuscule, within the Dalit community. Turning the searchlight inwards is also important if we have to make ourselves heard. We need to have some concern and imagination for our brethren who are left behind because the benefits of reservation have not reached them. Can we re-imagine the traditional contours of social justice?

There are places where we were under-represented before but as a community, we have made some steadfast progress like in the world of business and industry. Milind Kamble, founder of the Dalit Indian Chambers of Commerce and Industry says, “we need connections and not concessions”. There is a new generation of Dalit youth who are aspiring beyond the conventional tools of empowerment in the Constitution. The Centre has initiated multiple projects with the aim of creating a conducive ecosystem for Dalit entrepreneurship. New avenues of empowerment must be explored as opportunities in government sectors are gradually evaporating. As a community, we must learn to confront the questions which might be unpalatable for some. The debate on reforms — whether about reservation or nomenclature — must contain voices from the community. All stakeholders and thought-leaders from the community must articulate their perspectives and come together to create a positive and a more inclusive “New Dalit Consensus”.